श्रीमद् भगवद् गीता सार

आत्मगीता

स्वामी निरंजन

श्रीमद् भगवद् गीता सार

आत्मगीता

स्वामी निरंजन

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
प्रथम मुद्रण : कार्तिक पुर्णिमा, २००८
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर - २ (उड़िसा)
प्रच्छद : बिभु

मूल्य : **रु** 15/-

भूमिका

प्रायः अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले साधक श्रीमद्भगवद् गीता के एक अध्याय का नियम से प्रतिदिन पाठ तो कर लिया करते हैं । किन्तु उस अध्याय के उन श्लोकों के अर्थ को वे समझने की कोशिश भी नहीं करते हैं । पाठक समझते हैं कि हमारा कल्याण मात्र गीता पाठ करने से ही हो जावेगा । सम्पूर्ण जीवन गीता पढ़ते रहने पर भी उन साधकों को अपने जीवन में किंचित् भी शान्ति नहीं मिलपाती है । क्योंकि श्रीकृष्ण को माननेवाले, गीता पढ़ने वाले पाठक बिना अर्थ जाने न तो गीता में श्रद्धा करते हैं, न कृष्ण के वचन पर विश्वास करते हैं । जैसे अर्जुन श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! आपके सगुण साकार तथा निर्गुण निराकार ऐसे दो स्वरूप है । इनमें से आपके सगुण साकार रूप को तो में बचपन से आजतक देखता एवं सेवा करता ही आ रहा हूँ, पर मुझे

उससे अपने कल्याण का अनुभव किचित् भी नहीं हुआ । लेकिन मैंने ऐसा सन्तों से सुना एवं शास्त्रों में भी पढ़ा है की निर्गुण निराकार का दर्शन करने मात्र से जीव का तत्काल कल्याण हो जाता है।

अतः हे प्रभो ! मैं आपके निर्गुण निराकार अविनाशी रूप के दर्शन इन आंखों से कर अपने जीवन को धन्य-धन्य, कृत्य-कृत्य बनाना चाहता हूँ । इसलिये हे प्रभो ! दया करके आप अपने निर्गुण निराकार स्वरूप का मुझे दर्शन कराने की कृपा करें ।

अर्जुन की जिज्ञासा जान भगवान ने कहा हे अर्जुन ! मैं तुझे और सब कुछ दे सकता हूँ परन्तु इस नश्वर विकारी आँखों से उस अविकारी निर्गुण निराकार रूप के दर्शन नहीं करा सकता ।

फिर भी गीता अध्ययन करने वाले पाठक इस अध्याय ग्यारह के स्वाध्याय के समय यह कृष्ण-अर्जुन

वार्ता अवश्य ही पढ़ते हैं, परन्तु कृष्ण- अर्जुन का इस संवाद के तात्पर्य को वे नहीं समझ पाते हैं । यदि समझते होते तो वे कभी मन्दिर, तीर्थ जाकर इन प्राकृत आंखों से मूर्ति दर्शन करने की इच्छा कभी नहीं करते । क्योंकि भगवान स्वयं कह रहे हैं कि मैं इन आंखों से कभी किसी को भी नहीं दिखाई देता हूँ । फिर भी भगवान की बात पर विश्वास न कर वे गीता प्रेमी पाठक तथा भक्त, भगवान के नाम पर किसी चित्रकार या शिल्पी के द्वारा बनाये, कल्पित मूर्ति या चित्र के दर्शन करने हेतु इधर उधर-भटकते रहते हैं ।

अब दर्शक विचारें कि मन्दिर तीर्थ में हम किसके दर्शन कर प्रसन्न मुद्रा में घर लौट आते हैं ? जो दर्शन भगवान नहीं करा सकते क्या वही दर्शन मन्दिर का पुजारी, तीर्थ के पण्डा, भक्तों को करा सकेंगे ? यह विशेष विचारणीय विषय है ।

व्यवहारिक जीवन में भी सभी जानते हैं कि बिना नेगेटिव फिल्म के कोई भी फोटोग्राफर हमारी छवि नहीं उतार सकता । नेगेटिव द्वारा ही पोजेटिव चित्र बनते हैं, तब जिन भगवानों के चित्र मूर्ति की हम उपासना करते हैं, उन देवी-देवताओं का नेगेटिव पृथ्वी पर किसी के पास नहीं है, तब बिना नेगेटिव के बने चित्र मूर्ति वास्तविक कैसे हो सकेंगे ?

इसी प्रकार हनुमान भी कहते हैं कि हे प्रभो ! आपके दो रूप हैं एक सगुण साकार एवं एक निर्गुण निराकार । सगुण साकार शरीर का तो मैं दर्शन व सेवा कर ही रहा हूँ, पर मैंने सुना है कि आपके निर्गुण निराकार स्वरूप का साक्षात्कार करने मात्र से जीव तत्काल मुक्ति को प्राप्त हो जाता है । अतः आप मुझे अपने निर्गुण निराकार स्वरूप का दर्शन कराने की कृपा करें । जिसके फल स्वरूप मैं अपना कल्याण कर सकूँ ।

जबकि भक्तों को हनुमानजी अपने हृदय में ही परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव व साक्षात्कार कराने का सन्देश दे रहे हैं । फिर भी अज्ञानी अन्धे भगवान को बाहर चित्र, मूर्ति, तीर्थ मन्दिर में ही सारे जीवन खोजते फिरते रहते हैं और हनुमानजी द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर भी उनमें श्रद्धा नहीं करते हैं ।

नारदजी, भगवान के साकार रूप के नित्य दर्शन एवं साथ रहने पर भी अपने जन्म-मरण से छूटने के लिये भगवान से प्रार्थना करते हैं । तब भगवान ने कहा -'हे नारद ! अभी तू केवल मन्त्रवेत्ता, पण्डित मात्र है । जब तू किसी सद्गुरु की शरण में जाकर आत्म ज्ञान को प्राप्त करेगा तभी कल्याण को प्राप्त कर सकेगा । **'तरति शोकं आत्मवित्'** आत्म ज्ञान पाकर ही जीव जन्म-मरण चक्र से मुक्त हो पाता है । मुक्ति पाने का कोई अन्य उपाय नहीं है ।'

संत कबीर के शब्दों में –

कस्तूरी कुण्डल बसे मृग ढूंढे वन माहिं ।
राम बसे सबके हृदय, मूरख खोजन जाहिं ।।

भगवान भी कहते है कि–

विमूढ़ानानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः ।

१५/१०

अज्ञानी प्रयत्न कर भी परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को नहीं जान पाते हैं, केवल ज्ञान नेत्रवाले भाग्यशाली साधक ही उस परमात्मा को आत्म रूप से जान पातें हैं ।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।।

१५/११

मल, विक्षेप दोष से रहित विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति युक्त मुमुक्षु ही किसी सद्गुरु द्वारा वेदान्त महावाक्यों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन कर अपने हृदय

में ही स्थित इस आत्माको तत्त्वसे जानते हैं । किन्तु जिन्होंने अपने अन्तःकरणको निष्काम कर्म एवं उपासना द्वारा शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो मन्दिर, तीर्थ, पूजा, पाठ, यज्ञादि साधन द्वारा यत्न करते रहने पर भी इस आत्मा को नहीं जान पाते हैं ।

अब साधक सोचता है कि यह ज्ञान चक्षु कैसे प्राप्त होगा जिसके प्राप्त होने से हनुमान, अर्जुन, मीरा आदि भक्तों की तरह मुझे भी परमात्मा का सर्वत्र साक्षात्कार हो सकेगा ।

इन समस्याओं का उचित समाधान न मिलने से गीता पाठक गीता द्वारा अपने कल्याण का मार्ग नहीं खोज पाते हैं । तथा गीता पढ़कर मन में भारी पन का ही अनुभव करते हैं । क्योंकि गीता में अधिकारी भेद से कहीं कर्म, कहीं भक्ति, कहीं योग एवं कहीं ज्ञान को महत्व पूर्ण बतलाया गया है । जब साधक अपने लिये

निश्चय नहीं करपाते हैं कि मैं किस मार्ग से चलूँ ताकि सहज अपने जीवन के चरम लक्ष को प्राप्त कर सकूँ । तब ऐसा साधक बुद्धि में हल न मिलने पर फिर गीता पठन करना ही छोड़ देता है ।

ब्रह्म जिज्ञासा करने वाले साधकों की इस प्रकार की समस्या को देख कर यह संक्षिप्त ज्ञान गीता का संकलन किया है, जिससे साधक विवेक पूर्वक स्वयं या किसी सद्गुरु द्वारा समझकर श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करता रहे तो वह अपने जीवन के चरम लक्ष आत्म साक्षात्कार द्वारा अपने को धन्य बना सकता है ।

वास्तव में देखा जाय तो गीता का प्रारम्भ अध्याय २ श्लोक ७ में अर्जुन के द्वारा की गई जिज्ञासा से हुआ है एवं उसके कल्याणार्थ भगवान का उपदेश इसी अध्याय २ के ११ श्लोक से प्रारम्भ होकर ३० श्लोक तक अर्थात् कुल २० श्लोक में समाप्त हो गया है । फिर भगवान ने

१८ अध्याय के ७२ श्लोक में अर्जुन की मनोदशा के परीक्षार्थ प्रश्न किया

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।।

१८/६८

"हे पार्थ ! क्या मेरे द्वारा कहे गये गीता शास्त्रोपदेश को तूने एकाग्र चित्त से श्रद्धा पूर्वक श्रवण किया है ? यदि किया है तो फिर बता तेरा पूर्व अज्ञान जनित देहाध्यास नष्ट होकर आत्म निष्ठा जाग्रत हुई है ?"

और ७३ श्लोक में अर्जुन ने उत्तर देकर अपनी शांत मनोदशा का अनुभव प्रकट कर गीता उपदेश की पूर्णाहुति करादी । भगवान द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर अर्जुन ने कहा -

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।

१८/६९

"हे अच्युत ! आपके गीता शास्त्र श्रवण द्वारा मेरा अनादिकालिन अहंता-ममता रूप दोष नष्ट हो गया है और मुझे अपने अनादि कालीन भूले द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वरूप की दृढ़ स्मृति प्राप्त होगई है । अब मैं संशय रहित होकर आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये स्थित हूँ ।" पूर्ण गीता तो ७०० श्लोक में समाप्त हुई है किन्तु वह शेष ६८० श्लोक अर्जुन द्वारा किये गये विभिन्न संशयों का समाधान है । ब्रह्म जिज्ञासु हेतु उन प्रश्नोत्तर की कोई आवश्यकता न देख सार रूप में इस गीता दर्पण का नव निर्माण किया है । विशेष बोधार्थ साधक मूल गीता का अवश्य स्वाध्याय करे ।

स्वामी निरंजन

श्रीमद् भगवद् गीता सार

एकबार कुन्तीपुत्र अर्जुन के मन में अपने मानव जीवन के प्रति विचार जाग्रत हुआ कि शास्त्र, संत मतानुसार संसार में चौरासी लाख योनियाँ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन इन चार कार्यों में ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं । वे बारम्बार इस जन्म-मृत्यु के प्रवाह में कष्ट पाते चले आ रहे हैं ।

वेद शास्त्रों में तीन वस्तुओं को दुर्लभ बतलाया है १- मनुष्य जीवन, २- ब्रह्म जिज्ञासा, ३- सद्गुरु की प्राप्ति ।

उन समस्त योनियों का कष्ट निवारण एवं परमानन्द की प्राप्ति के साधन रूप शास्त्रों में इस मानव जीवन को सर्व श्रेष्ठ योनि कहा है । परमात्मा की अपनी अपार

करुणा से जीव को देव दूर्लभ मानव जीवन प्राप्त हुआ है । और यह मानव जीवन मुक्ति प्राप्त करने के लिये द्वार रूप बतलाया है । यदि जीव, परमात्मा की विशेष कृपा से यह जीवन पाकर भी अपने कल्याण का साधन नहीं करता है, तो आत्म हत्यारा हो महान् कष्ट को प्राप्त होता है । उसे मनुष्य रूप में पशु ही जानना चाहिये, जो इस देव दुर्लभ मानव जीवन को प्राप्त कर भी आत्म कल्याण के लिये प्रयन्त नहीं करता है । '**महति विनष्यति**' उसकी महान् दुर्गति होती है ।

ब्रह्म ज्ञान प्राप्तकर ही जीव मुक्ति को प्राप्त कर पाता है, लेकिन बिना ज्ञान के मुक्ति की प्राप्ति किसी भी प्रकार नहीं होती है ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।

७/१६

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! पवित्र कर्म करनेवाले आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी-ये चार प्रकारके मनुष्य मेरा भजन करते हैं अर्थात् मेरे शरण होते हैं ।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।

७/१८

परन्तु उन चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप है, ऐसा मेरा मत है । ज्ञानी को में अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि वह मुझे अपने आत्म स्वरूप से जानता है ।

अर्जुन ने विचारा की बिना आत्मज्ञान प्राप्त हुए जीव को शाश्वत शान्ति इस मृत्यु लोक से लेकर ब्रह्मादिक लोक तक नहीं है ऐसा वेद मत है। अतः अब मुझे भी इस जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटने के लिये सद्गुरु भगवान की

शरण ग्रहण करना ही होगा । यह सोच अर्जुन ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर खड़े हो हाथ जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना की ।

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्युर्मा अमृतं गमय

हे प्रभो ! आप मुझे असत्, नश्वर, दुःख रूप इस संसार से आसक्ति छुड़ाकर सत्य आत्मा में प्रीति जाग्रत करावें । हे प्रभो ! आप मुझे जड़ नश्वर शरीर से अहंता-ममता छुड़ाकर चेतन आत्मा में प्रीति जाग्रत कराने की कृपा करे । हे प्रभो ! आप मुझे मृत्युभय से मुक्ति दिला अमृत आत्मा का अनुभव कराने की कृपा करें ।

श्रीभगवान का उपदेश

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु ।।

१६/६

हे अर्जुन ! इस लोक में दो तरहके ही प्राणियोंकी सृष्टि है - दैवी और आसुरी ।अब तू मेरे द्वारा आसुरी प्रकृति वाले पुरुष के लक्षणों का श्रवण कर जो सर्वथा त्याज्य करने योग्य है । क्योंकि वे सब दुर्गुण जीव के कल्याण में बाधक है तथा दुर्गति प्रदान करने वाले हैं ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।

१६/७

आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य किसमें प्रवृत्त होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये, वे इसको नहीं जानते हैं और उनमें न तो बाह्य शारीरिक एवं आहार

सम्बन्धी शुद्धि होती है, न उनमें श्रेष्ठ आचरण ही होता है । जैसे दया, प्रेम, क्षमा, निर्वेरता, अदम्भ, अमानतादि सद्गुण नहीं होता है और न सत्य-पालन ही होता है ।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।।

१६/८

वेद पुराण में सृष्टि का उपादान कारण व निमित्त कारण एक ईश्वर को बतलाया गया है किन्तु वे आसुरी प्रकृति के लोग कहा करते हैं कि संसार असत्य है एवं बिना मर्यादाके और बिना ईश्वरके अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे रज-वीर्य मिश्रण द्वारा पैदा हुआ है । इसलिये काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और कोई कारण हो नहीं सकता । यह सृष्टि उसी प्रकार हो गई है, जैसे हल्दी और चुने के मिश्रण से लाल रंग पैदा हो

जाता है । इसी प्रकार स्त्री पुरुष के संयोग सम्बन्ध से सृष्टि का विस्तार होता है ।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।

१६/९

इस पूर्वोक्त नास्तिक दृष्टिका आश्रय लेनेवाले जो मनुष्य अपने द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वरूप को नहीं मानते है, व जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो अपने को कर्ता एवं जन्मने मरने वाला देह मानते हैं । जो मांस, मदिरा के भक्षण करने वाले तथा चोरी, हत्या, व्यभिचार आदि उग्र कर्म करनेवाले होते हैं, जो संसारके जीवों को अपने सुख हेतु कष्ट पहुँचाने वाले शत्रु रूप हैं, उन मनुष्योंकी सामर्थ्यका उपयोग जगत्का नाश करने के लिये ही होता है ।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।

१६/१०

जो कभी पूरी न होनेवाली कामनाओंका आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान अर्थात् सदाचार, कर्म, भक्ति, ज्ञान, पद, प्रतिष्ठा रहित होने पर मद में चूर रहते हैं तथा झूठ, चोरी, परस्त्रीगामी, अंडा, मछली, मांस, मदिरा आदि अपवित्र वस्तुओं का सेवन करनेवाले मनुष्य मोहके कारण दुराग्रहोंको धारण करके संसार में, नालियों व मल–मुत्र, फोड़ों के कीड़े बन नरक में विचरते रहते हैं ।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।

१६/११

वे मृत्युपर्यन्त रहनेवाली अपार चिन्ताओंका आश्रय लेनेवाले, पदार्थोंका संग्रह और उनका भोग करनेमें ही लगे रहते हैं 'जो कुछ है, वह इतना ही जीवन है' न भूत है, न भविष्य है, न स्वर्ग–वैकुण्ठादि लोक है – ऐसा निश्चय करनेवाले होते हैं ।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।

१६/१२

वे आकाश गमन, संकल्प से वस्तु उत्पन्न करने की, भूमि में छिपे धन को देखने की सिद्धि प्राप्त करने में आग्रह रखते हैं आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध परायण होकर पदार्थोंका भोग करने के लिये अन्यायपूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं ।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।

१६/१३

वे इस प्रकारके मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर ली है, अब इस मनोरथको पूरा करना है । इतना धन तो हमारे पास है ही और इतना धन फिर प्राप्त करना है ।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।
१६/१४

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओंको भी हम मार डालेंगे । हम ईश्वर हैं । हम भोग भोगनेवाले हैं । हम सर्व समर्थ बड़े बलवान् और सुखी हैं ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।
१६/१५

हम धनवान् हैं, दूसरों को यज्ञ, तप, दानादि करते देख एवं सम्मान पाते देख कर इर्षालु होकर बहुत-से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है ? हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और मौज करेंगे-इस तरह वे अज्ञानसे मोहित रहते हैं ।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।

१६/१६

नित्य प्राप्त सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को न खोज एवं देहाभिमान में रत अनेक कामनाओं के कारण तरह-तरह से भ्रमित चित्तवाले होते हैं । सत-असत्, विवेक ज्ञान रहित, मोह-जालमें अच्छी तरहसे फँसे हुए तथा पदार्थों और भोगोंमें अत्यन्त आसक्त रहनेवाले मनुष्य लार, कफ, मल, रक्त, रज, वीर्य, पीप रूप नरकों में अत्यन्त आसक्त हो महान् कष्ट को भोगते रहते हैं ।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।

१६/१७

श्रेष्ठ पुरुषों, सन्त व शास्त्रों को न मानने वाले वे अपने को पुज्य कहलाने की इच्छा रखने वाले घमण्डी

पुरुष धन व मान के मद से युक्त रहते हैं । वे लोग शास्त्र विधि से रहित अर्थात् सात्त्विक श्रद्धा सामग्री दान-तप से रहित केवल नाम मात्र के अपवित्र विचार द्वारा किये यज्ञ द्वारा पाखण्ड से यजन करते हैं ।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

१६/१८

मुझसे श्रेष्ठ धर्मी, भक्त, दानी, ज्ञानी, कर्मी, सदाचारी, सम्मानित कोई नहीं है । ऐसे अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोधका आश्रय लेनेवाले मनुष्य अपने और दूसरोंके शरीरमें रहनेवाले मुझ सच्चिदानन्द रूप अन्तर्यामी आत्मा के साथ द्वेष करते हैं । तथा मेरे और दूसरों के गुणों में दोष दृष्टि रखते हैं । अर्थात् देह इन्द्रिय से भिन्न आत्मा को नहीं जानते हैं ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।

१७/५

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।

१७/६ ।।

जो मनुष्य शास्त्र विधिसे रहित सत्यासत्य, नित्यानित्य विवेक रहित मन कल्पित कर्म करने वाले हैं, जैसे स्नान न करना, अग्नि पर चलना, बर्फ में बैठना, नंगे पैर धूप में चलना, कान, आंख को बन्द रखना, मौन बने संकेत से या लिखकर बात करना, काटें पर शयन करना, जीभ काट मूर्ति पर चढ़ाना, मुर्दे का मांस खाना, मल खाना, एक हाथ से काम करना, एक पैर से खड़े रहना, नेत्र दृष्टि से दर्पण तोड़ देना, किसी की मृत्यु हेतु अघोर कर्म करना आदि घोर कष्टप्रद तप को तपते हैं । वे दम्भ

व अहंकार से युक्त अपने यश, कीर्ति, नाम प्रचार हेतु अधार्मिक होते हुए भी अपने को धार्मिक चिह्न, राम नाम की चादर, गले में बड़ी मोटी रुद्राक्ष माला, हाथ में दण्ड, कमण्डल व धर्म शास्त्र, बड़े लम्बे तिलक, विभुति, मृग, बाघाम्बर लपेटना या आसन पर बैठना, जटा, दाढ़ी, मूंछ आदि धारण कर कामना और आसक्ति बल के अभिमान से फूले रहते हैं ।

वे शरीर रूप से स्थित पंच भूतों और अन्तःकरण में स्थित मन, बुद्धि, अहंकार रूप मुझ साक्षी आत्मा को ही कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला जान ।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।

१६/२३

जो मनुष्य शास्त्र विधिको छोड़कर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धि को, न सुख शान्ति को और न परम गतिको ही प्राप्त होता है ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

१६/२४

अतः तेरे लिये कर्तव्य–अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है– ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य–कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्र विधिके अनुसार ही कर्तव्य–कर्म करना चाहिये ।

दैवी प्रकृति

हे अर्जुन ! अब तू मुझसे उन दैवी सम्पदा को प्राप्त भक्त के लक्षणों को सावधान मनसे विस्तार पूर्वक श्रवण कर, जिसके द्वारा जीव अपने विवेक, वैराग्य लक्षण युक्त हो परमानन्द स्वरूप परमात्मा को पाने का अधिकारी हो जाता है ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ।।

१२/१३

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

१२/१४

जो सब प्राणियोंमें द्वेषभाव एवं स्वार्थभाव से रहित और सबका प्रेमी निःस्वार्थी, मित्र भाववाला तथा दयालु और ममता रहित रहता है वह अहंकार रहित, सुख-

दुःखकी प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर लाभ–हानि में सन्तुष्ट रहता है । मन व इन्द्रियों सहित शरीर को वशमें किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझमें अर्पित मन–बुद्धिवाला जो ज्ञानी भक्त है, वह मुझे प्रिय है ।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्ते यः स च मे प्रियः ।।

१२/१५

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणीसे उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष अर्थात् दूसरे की उन्नती देखकर संताप व ईर्षा न करने वाला, भय और उद्वेग (हलचल) – से रहित है, वह ज्ञानी भक्त मुझे प्रिय है ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

१२/१६

जो अपेक्षा (आवश्यकता) - से रहित, बाहर-भीतर से पवित्र अर्थात् सत्यता पूर्वक शुद्ध व्यवहार से द्रव्य की शुद्धि और उसके अन्न व धन से जीवन निर्वाह करता है । यथायोग्य उचित बर्ताव से आचरण की और जल मृतिका से बाहर की शुद्धि करता है । तथा राग-द्वेष, छल-कपट असत्य आदि विकारों का नाश होकर अन्तःकरण को स्वच्छ रखता है । चतुर अर्थात् जिस लक्ष्य प्राप्ति के लिये जीवन मिला था वह आत्म साक्षात्कार के कार्य को करने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहता है । उदासीन, व्यथासे रहित और सभी आरम्भोंका अर्थात् नये-नये कर्मोंके कर्ता पन के अभिमान का त्यागी तथा नये-नये सभी कर्मों के आरम्भका सर्वथा त्यागी है, वह ज्ञानी भक्त मुझे प्रिय है ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।

१२/१७

जो किसी इष्ट व बहुमूल्य वस्तु को पाकर न कभी हर्षित होता है, न इष्ट प्राप्ति के पदार्थ में रुकावट तथा चोरी करने वाले के प्रति न द्वेष करता है, न शोक करता है, न किसी पदार्थ की कामना करता है । जो यह करने योग्य कर्म मैंने क्यों नहीं किया और यह नहीं करने योग्य कर्म मैंने क्यों किया इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्मोंका त्यागी है, वह भक्तिमान् ज्ञानी मुझे प्रिय है ।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।।
१२/१८

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।
१२/१९

आत्मा तो निर्गुण निराकार है, उसे तो कोई देखता नहीं व साकार शरीर अपना नहीं है । ऐसे निष्ठावान शत्रु

और मित्रमें तथा मान-अपमान में सम है और शीत-उष्ण (शरीरकी अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दुःख (मन-बुद्धिकी अनुकूलता प्रतिकूलता) - में सम है एवं आसक्ति रहित होता है । जो निन्दा-स्तुति को समान समझनेवाला, मननशील, जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होने न होने में सन्तुष्ट रहता है, रहनेके स्थान तथा शरीर में ममता-आसक्तिसे रहित और स्थिर बुद्धिवाला है, वह भक्तिमान् ज्ञानी मुझे प्रिय है ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।

१३/७

हे अर्जुन ! श्रेष्ठ कार्य करके भी अपनी श्रेष्ठता, मान, बड़ाई का मन में अभाव रहना, तथा जैसी अपनी घर की, मन की स्थिति है, उस को वैसा ही सबके सम्मुख प्रकट करदेता, प्राणी मात्र में एक परमात्मा का भाव रखते

हुए किसी छोटे से छोटे जीव जन्तु को, अपने से कमजोर व गरीब व्यक्ति को किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाना, सामर्थ्य होते हुए भी अपने प्रति अपराध करने वाले को क्षमा करना तथा मन, वाणी की सरलता, श्रद्धा, विश्वास सहित सद्‌गुरु की सेवा करना, अन्तःकरण का अनित्य संसार के प्रति सुख बुद्धि का न होना, भीतर–बाहर की शुद्धि तथा इन्द्रियाँ व मन का निग्रह करना यह दैवी सम्पदा वाले भक्त के लक्षण है ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।

१३/८

जिस साधक के मन में इस लोक के विषय भोगों से ब्रह्मादिक लोक के सुख भोगों के पदार्थ के प्रति वैराग्य और जाति, आश्रम, विद्या, धन, पद आदि में मैं सर्व से श्रेष्ठ हूँ, इस प्रकार के अहंकार का अभाव एवं जन्म–

मृत्यु, जरा-व्याधि में जो सर्वदा दुःखों का ही विचार रखता है ।

असक्तिनरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।

१३/९

जिस के मन में धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र एवं सम्बन्धीजनों के प्रति यह सब मेरे हैं, इस प्रकार अहंता-ममता का अभाव रहता है, तथा अनुकूल पदार्थ धन, पुत्रादि के प्राप्ति में न हर्ष करता है व अनुकूल धन, पुत्रादि के नष्ट होने पर दुःख भी नहीं करता है अर्थात् दुःख-सुख में समत्व बुद्धि रखता है ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।

१३/१०

जिसके मन में मुझ परमेश्वर में एकी भाव से स्थिति अर्थात् भगवान मेरी आत्मा है, मैं वही ब्रह्म हूँ इस प्रकार से अव्यभिचारिणी भक्ति रहती है अर्थात् आत्म देव को छोड़ अन्य देवी-देवता की उपासना से उदासीन तथा मन से सदा आत्म चिन्तन परायण रहता है । ऐसे एकान्त और जन समुदाय से दूर शुद्ध देश में रहने का जिसका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय से उदासीन रहता है ।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।
१३/११

जिस साधक का मन आत्मज्ञान में सर्वदा लगा रहता है और जीव-ब्रह्म एकत्व रूप सर्वत्र दर्शन करता रहता है, यह सब तो ज्ञान है और जो जीव-ब्रह्म के प्रति भेद भ्रान्ति मन में रखता है और अन्य देवी देवता की उपासना करता है, वह सब अज्ञानी के लक्षण है ।

सद्गुरु उपदेश द्वारा विवेक, वैराग्यादि साधन सम्पन्न अधिकारी 'तत्त्वमसि' महावाक्य द्वारा जो निज आत्मा को ब्रह्म रूप जानने योग्य है । जिसको मैं रूप से अर्थात् आत्मा रूप से जानकर जीव अपने परमानन्द स्वरूप को प्राप्त होता है । वह तत्त्व आदि व अन्त रहित है अर्थात् अनादि, अनन्त परमब्रह्म जाति, गुण, क्रिया व सम्बन्ध रहित होने से उसे न सत, न असत कहा जा सकता है । इस प्रकार कोई दैवी सम्पदा वाला ही परमात्मा को जानने का अधिकारी हो पाता है ।

हे अर्जुन ! मैं तुझे विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति तथा ब्रह्म जिज्ञासा साधन सम्पन्न देख अब तेरे लिये कल्याण का सरल सुगम तत्त्वोपदेश करता हूँ । जिसे तू श्रद्धा, भक्ति पूर्वक सावधान मन से श्रवण कर, निःसन्देह भव बन्धन से पार हो सकेगा ।

हे अर्जुन ! बिना सद्गुरु के कोई भी मनुष्य इस

जन्म मरण के दुःख से मुक्त नहीं हो सकता ऐसा वेद मत है '**आचार्यवान् पुरुषो वेदः**' अर्थात्

गुरु बिन भव निधि तरई न कोई ।
जो बिरंचि शंकर सम होई ।।

अतः मैं तेरे लिये सर्व प्रथम सद्गुरु शरणागति करने की विधि बताता हूँ ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

४/३४

हे अर्जुन ! अपने कल्याण की इच्छा रखनेवाला साधक को सर्वप्रथम किसी आत्मवेत्ता सद्गुरु की शरण ग्रहण करना चाहिये । साधक जब गुरु आश्रम को जाता है, तब उसे अपने हाथ में गुरु के उपयोगी सामग्री लेजाकर उनके चरणों में भेंट करना चाहिये । फिर उन्हें श्रद्धा भक्ति

भाव से भूमि पर लेटकर साष्टाङ्ग दन्डवत् प्रणाम करना चाहिये ।

उन सद्गुरु को भगवान रूप जानकर निष्कपट भाव से उनकी सेवा शुश्रुषा द्वारा प्रसन्न करें । उनके द्वारा तुम्हारे आने का कारण पूछा जाय, तब उन्हें अपने कल्याणार्थ निवेदन करें । वे आत्मतत्त्व को जानने वाले तत्त्वनिष्ठ ज्ञानी संत तुझे गुप्त आत्मज्ञान का उपदेश करेंगे ।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।

९/२

हे अर्जुन ! यह ज्ञान जो मैं तुझे कहने जा रहा हूँ, यह सब विद्याओं का राजा अर्थात् श्रेष्ठ है तथा विश्व में जो कुछ भी छुपाने योग्य वस्तु या बात है, उससे भी अधिक गोपनीय यह ज्ञान है । संसार में जो कुछ भी तीर्थ, मन्दिर, मूर्ति एवं गंगा, यमुना, सरस्वती आदि पवित्र

कहलाने वाले स्थान हैं, उनसे भी अधिक यह ब्रह्म विद्या पवित्रतम है । संसार में यज्ञादि कर्म का फल शास्त्र द्वारा माना जाता है किन्तु इस ब्रह्मविद्या का फल अग्नि उष्णवत्, बर्फ शीतलवत्, चीनी मधुरवत् प्रत्यक्ष एवं तत्काल फल रूप है । यह विद्या धर्म युक्त, साधन करने में केवल श्रवण द्वारा ही सुगम एवं नित्य फल रूप है ।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।

१४/२

हे अर्जुन ! इस ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने वाला ज्ञानी पुरुष अपने को 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् 'मैं ही कारण कार्य रूप ब्रह्म हूँ ' – ऐसा जानने वाला न तो प्रलय काल के भयंकर अग्नि व जल प्रवाह को देख डरता है, न पुनः सृष्टि काल में आता है । अर्थात् आत्म निष्ठ पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता है ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।

९/३

परन्तु हे अर्जुन ! मेरे इस ज्ञानामृत रूप उपदेश में जो अज्ञानी पुरुष अश्रद्धा करता है अर्थात् परमात्मा को अपने से पृथक् व अपने को कर्ता-भोक्ता रूप जीव तथा देहाभिमान करता है, वह परमात्मा को प्राप्त न कर जन्म-मरण के बन्धन को भोगता रहता है ।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।

१८/५८

हे अर्जुन ! तू अपने देह अभिमान व कर्तापन का अहंकार त्याग कर निरन्तर आत्मभाव में ही स्थित रहने का प्रयत्न कर । जिसके फल स्वरूप तू इस अनादि जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो सकेगा ।

हे अर्जुन ! यदि तू मेरे इस सत्य उपदेश को श्रवण कर इस पर श्रद्धा न कर, अपने देह भाव व कर्ताभाव का त्याग नहीं करेगा तो तू आत्म हत्यारे की गति को प्राप्त हो परमार्थ पथ से भ्रष्ट व नष्ट हो जावेगा ।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।
२/३३

हे अर्जुन ! अनादि काल से देह रूप कुरुक्षेत्र में प्रत्येक मनुष्य के साथ धर्म तथा अधर्म रूप नित्य युद्ध होता चला आ रहा है । '**सत्यमेव जयते** ।' सत्य की ही सदा विजय होती है । सत् पुरुषों के संग से सत्यनिष्ठा अर्थात् आत्मनिष्ठा बलवती होती है । जो उसके कल्याण का प्रत्यक्ष हेतु है । यदि मनुष्य दुष्ट पुरुषों का संग करलेता है, तो दुर्गुण बलवान् होकर उसका पतन हो जाता है ।

अतः हे अर्जुन ! तू अपने नाम, रूप,जाति, आश्रम, सम्बन्धी जनों तथा देह की परिणाम जन्म-मृत्यु के अभिमान का सर्वथा परित्याग कर और मेरे बताये हुए इस परम पवित्र आत्म धर्म को स्वीकार कर । यदि तू इस आत्म धर्म को स्वीकार नहीं करेगा तो तेरा देहाभिमान तूझे पतन के मार्ग में घसीट कर पाप एवं दुःख रूपता को प्रदान करेगा, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है ।

अर्जुन ने भगवान् के श्रीमुख से ब्रह्मविद्या का माहात्म्य जान अपने कल्याण हेतु निवेदन किया-

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।२/७

हे प्रभो ! बुद्धि की मन्दता के कारण या विषम परिस्थितियों के कारण धर्म के सम्बन्ध में, मैं कर्तव्य तथा

अकर्तव्य का निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ । अतः मेरे लिये जो कल्याण कारक सरल, सुगम साधन है, उसे बतलाने का कृपा करें ।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।।

९/३३

हे अर्जुन ! प्रथम तू मुझसे इस संसार का स्वरूप जान । जैसे पुस्तकों के स्थान को पुस्तकालय, भोजन के स्थान को भोजनालय, औषधों के स्थान को औषधालय कहाजाता है, इसी प्रकार यह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप जीव का संसार दुःखालय मात्र है । अतः तू देहाभिमान रूप संसार का मन से त्याग कर

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ।।९/२१

हे अर्जुन ! बहुत से लोग इस नश्वर क्षण भंगुर शरीर के सुखों का परित्याग कर स्वर्गलोक के दिव्य सुख भोग के लिये यज्ञ, दानादि शुभ कर्म करते हैं, लेकिन वे पुण्यशाली मृत्यु के बाद स्वर्ग सुख भोग पुनः इस मृत्युलोक में कल्याणार्थ भेज दिये जाते हैं । इस प्रकार जो अपने कल्याण के लिये ज्ञान प्राप्ति की चेष्टा न कर केवल सकाम कर्म में ही आसक्त रहते हैं वे सकामी पुरुष बारम्बार जन्म-मृत्यु को ही प्राप्त होते रहते हैं ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

८/१६

हे अर्जुन ! जो भक्त अपने इष्ट की भेद भक्ति करने के परिणाम स्वरूप मिलने वाले ब्रह्मादिक लोक को जाते हैं, वे भी प्रलय काल में उन लोकों व इष्ट के नष्ट हो जाने पर पुनः इसी मृत्युलोक में आ जाते हैं ।

परन्तु हे अर्जुन ! जो साधक विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति तथा मुमुक्षुता युक्त किसी सद्गुरु की शरण ग्रहण कर मुझ परमात्मा को आत्मा रूप से जानलेते हैं, उन ज्ञानी महात्मा को पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता है ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

१८/६६

हे अर्जुन ! तू आश्रम, जाति, वर्ण, देश, काल, सामाजिक, कुटुम्बिक, साम्प्रदायिक तथा समस्त देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के धर्मों का व यज्ञ, तप, सन्ध्या, पूजा आदि का मन से परित्याग कर दे क्योंकि धर्म अधर्म दोनों हि बन्धन रूप है ।

केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव के साथ अभिन्न भाव द्वारा अनन्य शरण ग्रहण करके आत्म निष्ठा को धारण कर । यदि इन समस्त बाह्य तथा देह अन्तर्गत

धर्मों के त्याग द्वारा पाप को प्राप्त होने का भय करता है तो तू इसकी चिन्ता मत कर । मैं तुझे विश्वास दिलता हूँ कि आत्मनिष्ठावान् पुरुष को पाप स्पर्श उसी प्रकार नहीं करते हैं जैसे कि सूर्य को अन्धकार स्पर्श नहीं करता है । धर्म द्वारा उत्पन्न पूण्य भी १०० करोड़ जन्मों का कारण होता है । इसलिये धर्म को भी तू पाप तुल्य बन्धन रूप ही जान ।

हे अर्जुन ! मोक्ष की प्राप्ति न कर्म करने से होती है, न कर्म तथा ज्ञान समुच्चय से होता है । मोक्ष तो आत्मा का स्वरूप है, इसलिये उसे प्राप्त करना नहीं है । बल्कि प्राप्त स्वरूप में अप्राप्ति का भ्रम की ही निवृत्ति करना है । जो कि किसी सद्गुरु के द्वारा 'तत्त्वमसि' महावाक्य के उपदेश द्वारा ही हो सकेगी ।

जैसे अग्नि को उष्णता, बर्फ को शीतलता, चीनी को मधुरता प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार के साधन करने की आवश्यकता नहीं रहती है । क्योंकि उष्णता,

शीतलता, मधुरता उनका अपना नित्य प्राप्त स्वभाव ही है । इसी प्रकार परमात्मा जीव का अपना नित्य प्राप्त स्वभाव ही है ।

जिस प्रकार पंखे, हिटर, कूलर, टिवि आदि का चलना ही बिजली होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इसी प्रकार हमरा होना ही परमात्मा होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । परमात्मा हमारा स्वभाव है, जिसे हम जन्म से ही साथ लेकर आये हैं । इसके बिना हमारा एक क्षण रहना भी सम्भव नहीं होसकता । कहा भी जाता है कि '**उसकी सत्ता के बिना पत्ता भी नहीं हिलता है**' तब उसके सत्ता के बिना यह हमारा कहलाने वाला जड़ शरीर किस प्रकार कोई काम कर सकेगा ?

अस्तु ! जब हम उठते हैं तो परमात्मा ही हम में उठता है । जब हम चलते हैं, तो परमात्मा ही हम में चलते हैं । जब हम देखते हैं, तब परमात्मा ही हम में

देखते हैं । जब हम सुनते हैं, तब परमात्मा ही हम में सुनता है । जब हम बोलते हैं, तब परमात्मा ही हम में बोलते हैं । जब हम सोते हैं, तब परमात्मा ही हम में जागता हुआ प्राण क्रिया करता रहता है । जब हम उठते हैं तब हम में परमात्मा ही उठता है, और यदि वह न उठे तब हमरा उठना, चलना, देखना, सुनना, बोलना क्या सम्भव हो सकेगा ? इसलिये कहा जाता है कि 'उसकी सत्ता के बिना पत्ता भी नहीं हिलता है' ।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।। १३/१

इसके उपरान्त भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि- यह तेरा और मेरा शरीर क्षेत्र है और इसको जानने वाले क्षेत्रज्ञ नाम से जाने जाते हैं ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। १३/२

हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा मुझको जान । क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात् विकार सहित प्रकृति का और विकार रहित पुरुष को जो तत्त्व से जानता है, वही ज्ञान है । ऐसा जहाँ विचार किया जाता है, वही सच्चा सत्संग है । ऐसा जड़-चेतन, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, द्रष्टा-दृश्य, आत्मा-अनात्मा, शव-शिव का ज्ञान जिस ग्रन्थ में पाया जाता है, वही सद्ग्रन्थ है एवं ऐसा उपदेश कर्ता संत ही सच्चा सद्गुरु है, ऐसा मेरा मत है ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।

२/११

श्री भगवान् बोले- हे अर्जुन ! तूने जो मुझसे प्रथम कहा था कि '**मृत्योर्मा अमृतं गमय**' मुझे मृत्यु के भय से निकालकर अमृत्व की प्राप्ति करावें । इस प्रकार तेरी बात सुनकर तो मुझे लगा कि तू ज्ञानी है, क्योंकि तू

अमृत आत्म तत्त्व की बात पूछ रहा है । दूसरे तरफ यह भी कहता है कि 'मैं मृत्यु से कैसे पार हो सकूँगा ?' हे अर्जुन ! ज्ञानी लोग तो जन्मने वाले बालक का आन्तरिक रूप से न तो हर्ष मनाते हैं और न मरने वाले पुरुष का आन्तरिक रूप से दुःख मनाते हैं ।

ज्ञानी जानते हैं कि जन्मने वाले की एक दिन अवश्य मृत्यु होगी एवं मरने वाले का निश्चित् ही पुनर्जन्म होगा । क्योंकि आत्मज्ञान बिना कोई भी व्यक्ति आवागमन से नहीं छूट पाते हैं ।

आत्मोपदेश

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।

२/१२

वास्तव में न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था और तू नहीं था तथा ये राजालोग नहीं थे और इसके बाद भविष्य में मैं, तू और यह सब राजा लोग नहीं रहेंगे, यह बात भी नहीं है । क्योंकि आत्मा नित्य वस्तु है उसका कभी नाश नहीं होता है । अस्तु हे अर्जुन ! अपने को द्रष्टा, साक्षी, आत्म रूप जान ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।

२/१३

जैसे देह उपाधिवान् जीवात्मा के इस देह में कुमार, युवा और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही सब जीवों को मरने के बाद अन्य नूतन शरीर की प्राप्ति होती है । उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होते हैं । जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्था रूप स्थूल शरीर का विकार अज्ञान से आत्मा में भासता है, वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होना तथा सूक्ष्म शरीर का विकार भी अज्ञान से आत्मा में भासता है। इसलिये तत्त्व को जानने वाला धीर पुरुष देह में आसक्त नहीं होता है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।

२/१४

हे कुन्तीनन्दन । इन्द्रियोंके विषय जड़ पदार्थ अनुकूलता और प्रतिकूलता के द्वारा शीत-उष्णादि सुख-दुःख को देनेवाले हैं, तथा आने-जानेवाले और

अनित्य हैं । हे भरतवंशी अर्जुन ! उनको तू सहन कर । क्योंकि बिना प्रयत्न के स्वतः आये यह विषय अपने स्वभाव अनुसार स्वयं ही चले जायेंगे । अतः उनको दूर करने का व्यर्थ परिश्रम मत कर । तू देह के धर्म से ऊपर उठकर अपने को अविनाशी आत्मा जान ले कि मैं असंग आत्मा हूँ। यह देह इन्द्रिय और अन्तःकरण के धर्म मुझ आत्मा को स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।

२/१५

क्योंकि हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! सुख-दुःख, दृश्य, प्रकाश्य विषय को साक्षी भाव से समान समझनेवाले ज्ञानी अपने को द्रष्टा प्रकाशक जानते हैं । जिसने आत्मा में स्थिति लाभ की है, वह धीर पुरुष नाम, रूप से दृष्टि हटा अधिष्ठान पर ही दृष्टि रखते हैं । उस पुरुष को अपने से

भिन्न यह अनात्म दृश्य वर्ग अर्थात् इन्द्रियों के अनित्य एवं दुःख रूप विषय व्याकुल नहीं कर सकते । अर्थात् उसे अपने द्रष्टा आत्म स्वरूप से विचलित नहीं कर सकते । ऐसा ज्ञानी ही मोक्ष को प्राप्त होता है । हे अर्जुन ! जिसे भी तू जानता, देखता है वह दृश्य अनात्म वस्तु तू नहीं है, ऐसा निश्चय से जान ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।

२/१६

असत् वस्तु की तो केवल व्यावहारिक सत्ता है, किन्तु उसका अस्तित्व तो रस्सि में सर्प की तरह प्रातिभासिक सत्ता प्रतिति मात्र होने से असत ही है । सत्य आत्मा सर्व काल, सर्व देश, सर्व रूप में होने से उसका तीनों कालों में अभाव नहीं है । इस प्रकार इन दोनों का ही निर्णय तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों के द्वारा ही

किया गया है । हे अर्जुन ! तू अपने को अविनाशी आत्मा ही जान तथा इस नाशवान् शरीर का अभिमान मन से त्याग और सुखी हो जा ।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।

२/१७

नाश रहित तो उसको जान कि जिस साक्षी चैतन्य आत्मा की सत्ता से यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् को सत्ता तथा स्फूर्ति प्रदान कर व्याप्त है । क्योंकि इस क्षति और वृद्धि से रहित अविनाशी आत्मा का देश, काल वस्तु से परिच्छेद रूप विनाश करने को कोई भी सत्ता समर्थ नहीं है । क्योंकि ब्रह्म से भिन्न अन्य कुछ भी सत्ता नहीं है । हे अर्जुन ! वह अविनाशी आत्मा तू अपने को ही जान, निर्भयता को प्राप्त हो जा।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।
२/ १८

नाश रहित तथा अप्रमेय नित्य आत्म स्वरूप के अज्ञान से यह जीव संसार चक्र में भ्रमण करता चला आ रहा है । जीवों के समष्टि, व्यष्टि सब शरीर नाशवान कहे गये हैं । इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन ! तू अनित्य देहादि के लिये शोक न कर । क्योंकि तू इस अनित्य नश्वर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि संघात से भिन्न असंग द्रष्टा, साक्षी, आत्मा है ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।
२/१९

जो इस जीवात्मा को मारनेवाला समझता है, तथा अन्य द्वारा मरने वाला मानता है, वे दोनों ही देहाभिमानी

होने के कारण आत्मा के यथार्थ अविनाशी स्वरूप को नहीं जानते हैं । क्योंकि यह आत्मा न मारता है न किसी के द्वारा मारा जाता है । हे अर्जुन ! वह नित्य आत्मा तू ही है, ऐसा निश्चय से जान सुख से विचरण कर ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। २/२०

यह आत्मा किसी काल में न जन्मता है और न यह कभी मरता है, न यह आत्मा उत्पन्न होकर फिर सत्तावान अस्ति रूप से होनेवाला है । क्योंकि यह आत्मा नित्य, सनातन, अखण्ड, व्यापक तथा अजन्मा है । निरवयव होने से सदा एक रूप बना रहता है । सबसे पुरातन है, फिर भी नित्य नूतन बना रहता है । हे अर्जुन ! इस अनात्म शरीर का शस्त्र, अग्नि, जल, पवन से नाश

होने पर भी इस आत्मा का किसी प्रकार भी नाश नहीं होता है । क्योंकि इस अविनाशी आत्मा का नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है और वह अविनाशी आत्मा तू अपने को जान,निर्भयता से जीवन को साक्षी बनकर देखता रह ।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।।

२/२१

हे पृथा पुत्र अर्जुन ! यह आत्मा जन्मना, रहना, बढ़ना, युवा होना एवं वृद्ध हो नष्ट होना रूप इन षट् विकारों से रहित है । जो पुरुष इस आत्मा को नाश रहित नित्य, अजन्मा, अव्यय जानता है, यानि वह मैं ही हूँ ऐसा साक्षात् अनुभव करता है, तब वह आत्मतत्त्व को मैं रूप से जानने वाला अविकारी पुरुष देहाभिमान रहित होने से तथा सर्वत्र आत्म दर्शन करते रहने से कैसे किसको मरवाता है और कैसे किससे स्वयं मरता है ?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा –
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

२/२२

यदि तू कहे कि मैं तो शरीरों के वियोग का शोक करता हूँ, तो यह भी उचित नहीं है क्योंकि जैसे मनुष्य वस्त्रों को व्यवहार से अयोग्य होने पर या फटे पुराने हो जाने पर त्याग कर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही सब देह में स्थित अहं रूप से जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नाम, रूप, गुण, जाति विशिष्ट नये शरीर को प्राप्त होता है । परन्तु हे अर्जुन ! इस अखण्ड, अचल, व्यापक आत्मा में आना-जाना नहीं होता है और यही तेरा स्वरूप है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

२/२३

हे अर्जुन ! तुझ निराकार अशरीरी आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते हैं । क्योंकि आत्मा के मनुष्य की तरह अंग, अवयव नहीं है किन्तु आकाश की तरह निरवयव है । उसी प्रकर इस निरवयव निराकार आत्मा को अग्नि नहीं जला सकती है, इसको जल गीला नहीं कर सकता है, वायु इसे नहीं सुखा सकती है । यह अग्नि, शस्त्राादि साधन तो साकार शरीर को ही नष्ट कर सकते हैं किन्तु निराकार तुझ आत्मा को नहीं ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।

२/२४

क्योंकि यह आत्मा निराकार, निरवयव, अशरीरी होने से अदाह्य, अच्छेद्य, अक्लेद्य है । द्रविभूत न होने से सोखने के अयोग्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह, नित्य, सर्वव्यापक, अपने अचल रूप में पहाड़ कि तरह स्थिर रहने वाला और सनातन है । और वह अचल आत्मा तू है ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।

२/२५

यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों का अविषय होने से अचिन्त्य अर्थात् मन का अविषय है और यह आत्मा निराकार होने से विकार रहित अर्थात् न बदलने अविकारी कहा जाता है । इससे हे अर्जुन ! इस आत्मा को अविनाशी जानकर तेरा इसके लिये शोक करना उचित नहीं है कि मैं मर जाउँगा या मेरे द्वारा कोई मारा

जायेगा ।अतः तू अपने को असंग, निष्क्रिय, निर्विकार, अविनाशी, द्रष्टा, साक्षी आत्मा ही जान ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।।

२/२६

जैसा की अज्ञानीजन देह उत्पत्ति से मैं जन्मा, और देह नाश से मैं मरा ऐसा मानते हैं तो भी उस दृष्टि से यदि तू इस अविनाशी आत्मा को सदा जन्मने व सदा मरने वाला मानता है तो हे अर्जुन ! इस प्रकार अनिवार्य प्रकृति के नियम में तू शोक करने के योग्य नहीं है ।क्योंकि मरने वाला पुनः जन्म को प्राप्त होने ही वाला है ।इसलिये भी तू मृतक् के लिये शोक करने के योग्य नहीं है ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

२/२७

क्योंकि ऐसे होने से तो संचित कर्म का फल भोग हेतु जन्मने वाले की निश्चित मृत्यु होगी और मरने वाले का पुनः जन्म अनादि संचित् कर्म राशी में से भोगने हेतु होगा ही । इस प्रकार यह सृष्टि का अनादि नित्य क्रम होना सिद्ध हुआ । इससे भी प्रकृति के अनिवार्य नियम में तू इस बिना उपाय वाले विषय में शोक करने के योग्य नहीं है । हे अर्जुन ! तू आत्मा होकर देह सम्बन्ध में तेरा चिन्तित होना उचित नहीं है ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।।

२/२८

हे भारत ! सभी प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी पुनः अप्रकट हो जायँगे, केवल बीचमें ही प्रकट दीखते हैं । अतः इसमें शोक करनेकी बात ही क्या है ? जैसे घट बनने के पूर्व जो मिट्टी है, घट

नाश के बाद मिट्टी ही रहती है । तब घट प्रतीति के समय भी वह मिट्टी ही रहती है । घट नाम मिथ्या मात्र है । इसी तरह शरीर से पहले जो अव्यक्त आत्मा है, शरीर समाप्ति पर भी वह अव्यक्त आत्मा ही रहता है । मध्य में शरीर की प्रतीति होने पर भी वह अव्यक्त आत्मा ही रहता है । अतः तू अपने को नश्वर देह न जान बल्कि अविनाशी आत्मा ही जान ।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन –
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।।

२/२९

द्रष्टा आत्मा इन्द्रिय विषय की तरह दृश्य रूप न होने से, अप्रमेय है अर्थात् इन्द्रियों के ग्राह्य विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि की तरह ज्ञेय रूप नहीं है । सबके

हृदय में विद्यमान मन, बुद्धि के साक्षी द्रष्टा आत्मा को कोई महापुरुष ही समस्त देवी, देवता, अवतार, तीर्थ, मन्दिर, पूजा, पाठ से उपराम होकर चित्त शुद्धि द्वारा आश्चर्य की तरह देखता है और मन,वाणी के अविषय होने पर भी नेति-नेति से संकेत रूप इसे कोई महापुरुष ही आश्चर्य की तरह आत्म तत्त्व को कहता है और दूसरा कोई साधक ही इस आत्मा को साधन सम्पन्न होकर सद्गुरु द्वारा आश्चर्य कि तरह वेदान्त महावाक्य 'तत्त्वमसि' का उपदेश सुनता है और फिर मनन,निदिध्यासन से वही ब्रह्म मैं हूँ ऐसा जानता है । कोई-कोई मोक्ष के प्रतिबन्धको के कारण अथवा बुद्धि की मलिनता, या भेद वादी गुरु के संग दोष एवं सद्गुरु के अप्राप्ति के कारण भी इस आत्मा को नहीं जानता है ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

२/३०

हे अर्जुन ! यह द्रष्टा, साक्षी, आत्मा ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त सबके शरीर में सदा ही अविनाशी रूप से विद्यमान रहता है । इसलिये सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिये तू शोक करने योग्य नहीं है । स्थूल देह का तो प्रारब्ध भोग समाप्ति पर स्वतः ही नाश हो जाता है एवं सूक्ष्म देह का ज्ञान होने के बाद नाश हो जाता है । किन्तु हे अर्जुन ! तुझ आत्मा का नाश करने योग्य कोई भी पुरुष एवं साधन समर्थ नहीं है ।

इसलिए हे अर्जुन ! तू अपने को इस जन्मने मरनेवाले नश्वर शरीर से पृथक् अविनाशी नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्, चित्, आनन्द, द्रष्टा, साक्षी, आत्मा रूप ही जान ।

श्री भगवान द्वारा अर्जुन की परीक्षा

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ।।

१८/७२

इस प्रकार गीता का उपदेश कर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन से पूछा कि – 'हे पार्थ ! मेरे द्वारा सुनाये गये तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, शिवोऽहम्, प्रज्ञानंब्रह्म आदि महावाक्यों का क्या तूने एकाग्र चित्त से श्रद्धा पूर्वक श्रवण किया है ? और हे धनञ्जय क्या उन महावाक्यों को सुनने से तेरा अनादि अज्ञान जन्य देहाध्यास अर्थात् देहात्म बुद्धि नष्ट हुई है ?'

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

१८/७३

श्रीभगवान् के द्वारा पूछने पर अर्जुन ने कहा – हे अच्युत ! मेरी तो कोई सामर्थ्य नहीं थी किन्तु केवल आपकी ही कृपा से आत्मज्ञान श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा मेरा देह, इन्द्रिय, मन आदि के कार्य एवं भोगों से मैं–मेरे पन का भाव तथा देह सम्बन्धी मोह नष्ट होगया। और अब मुझे यह बोध हुआ कि यह पंच भूत रूप दृश्य शरीर, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, पंच कोष रूप सूक्ष्म शरीर, तथा अज्ञान रूप कारण शरीर, तीन गुण, चौदह त्रिपुटियाँ तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप संसार मैं नहीं हूँ, मैं तो असंग निःष्क्रिय, निराकार, अविनाशी, सत्,चित्,आनन्द नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ ।

माहात्म्य

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।

१८/६७

हे अर्जुन ! तेरे पूछने पर तेरे हित के लिये कहे हुए इस परम गोपनीय, परम रहस्य गीता ज्ञान अमृत का किसी काल में भी न तो अद्वैत ज्ञानपर अश्रद्धा करने वाले को, न गुरु द्रोही को, न इन्द्रिय असंयमी को, न सकामी कर्मी को, न सगुण भक्तों को, न ब्रह्म जिज्ञासा से रहित अज्ञानी को, न गुरु देव, माता, पिता की भक्ति से रहित को, न बिना सुनने की इच्छा वाले को और जो निर्गुण, निराकार, ब्रह्म, भगवान की अर्थात् आत्मज्ञान की निन्दा करता है ऐसे लोगों को कभी नहीं कहना

चाहिये । परन्तु जिनमें यह सब उपरोक्त दोष नहीं हों, ऐसे मेरे भक्तों के प्रति प्रेम पूर्वक, उत्साह के सहित निष्काम भाव से अवश्य कहना चाहिये ।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परांकृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।।

१८/६८

जो पुरुष इस परमानन्द दायक मोक्ष स्वरूपी रहस्य युक्त मेरे इस गीता शास्त्र को केवल विवेक, वैराग्य आदि साधन चतुष्ट अधिकारी तथा गुरु भगवान में भक्ति रखने वाले, आत्म ब्रह्म में निष्ठा करने वाले मेरे भक्तों को, जो जिज्ञासा कराने वाले हैं, उन मुमुक्षुओं को निष्काम भाव से प्रेम पूर्वक पढ़ायेगा या सरल अर्थ बताकर व्याख्या द्वारा इसका प्रचार करेगा, वह आत्मज्ञानी पुरुष निःसन्देह ही मेरे को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होगा । आत्म ज्ञान की ऐसी महिमा है, इसमें कोई शंका न करें ।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।

१८/६९

इस प्रकार जो स्वयं मुक्त होकर अन्य को मुक्तता का अनुभव कराता है, तथा मेरी प्राप्ति का सरल साधन बताता है और जिसमें उपदेश करने के लिये आलस्य नहीं है, उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करने वाला, अत्यन्त प्यारा पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं हो सकता ।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मितिः ।।

१८/७०

हे अर्जुन ! जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूप गीता शास्त्र को श्रद्धा पूर्वक ध्यान से पढ़ेगा तथा विवेक, विचार पूर्वक नित्य पाठ करेगा उसके द्वारा

में जीव ब्रह्म एकत्व ज्ञानरूपी यज्ञ से पूजित होउँगा । ऐसा मेरा मत है ।

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।
१८/७१

हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोष दृष्टि से रहित हुआ इस गीता शास्त्र का विचार पूर्वक श्रवण मात्र भी करेगा वह भी स्वधर्म का आचरण रूप, निष्काम कर्म करने से पापों से मुक्त हुआ उत्तम कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होवेगा । जहाँ जाकर उसे तत्त्वज्ञान प्राप्ति का सुअवसर मिल सकेगा ।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।
४/३९

हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय तथा परमात्मा को प्राप्त करने के लिए तत्पर हुआ श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है । जिसके फल स्वरूप वह तत्क्षण भगवद् प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है ।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायंलोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।

४/४०

किन्तु हे अर्जुन ! अपने को आत्म रूप से न जानने वाला तथा श्रद्धा रहित पुरुष परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है । इसके लिये यहलोक और परलोक दोनों ही से भ्रष्ट हो जाता है । कहावत भी है कि 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' ।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।

६/३७

अर्जुन ने कहा – हे प्रभो ! योग से जो साधक चलायमान हो गया है अर्थात् अन्तिम क्षण में आत्म स्मृति से च्यूत हो गया है और मन जिसका शिथिल यत्न वाला है, वह श्रद्धायुक्त पुरुष योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत् साक्षात्कार को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है ?

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।।

६/४०

भगवान ने कहा – हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में न परलोक में नाश होता है, क्योंकि कोई भी शुभ कर्म करने वाला अर्थात् भगवत्–अर्थ कर्म करने वाला दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है ।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।

६/४१

किन्तु हे अर्जुन ! यह योग भ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादिक उत्तम लोकोंको प्राप्त होकर उनमें बहुत वर्षों तक वास करके शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है ।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।

६/४२

अथवा हे अर्जुन ! वह वैराग्यवान् पुरुष स्वर्गादिक उत्तम लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के कुल में ही जन्म लेता है, परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है, वह संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है ।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।

६/४३

हे अर्जुन ! वह पुरुष वहाँ उस पहले शरीर में किये हुए बुद्धि के संयोग को अर्थात् समत्व बुद्धि योग के संस्कार को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे – कुन्तिनन्दन ! उसके प्रभाव से फिर वह अपने कल्याण को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ।

इति श्रीमद्भगवद्गीता रूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद में '**आत्म गीता**' नामक महाग्रन्थ समाप्त होता है ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ब्रह्मरूप पहिचानो साधो

ब्रह्मरूप पहिचानो रे ॥

कान ब्रह्म नहीं, शब्द ब्रह्म नहिं

कान उसे नहिं सुनता रे ।

ब्रह्म रूप तुम जानो उसको

जो कानों से सुनता रे ॥

आँख ब्रह्म नहीं, रूप ब्रह्म नहीं

आखों से नहीं दिखता रे ।

ब्रह्म रूप तुम जानो उसको

जो आँखों से देखत रे ॥

वाणी ब्रह्म नहीं मन्त्र ब्रह्म नहीं

जप करी करी हारे रे ।

वाणी जिससे प्रकाशित होय

ब्रह्म कहावत् सोय रे ॥

प्राण ब्रह्म नहीं, अपान ब्रह्म नहीं

ध्यान समाधि में नहीं आय रे ।

ब्रह्म रूप तुम जानो उसको
जो प्राणों को चलाता रे ॥

मन ब्रह्म नहीं, बुद्धि ब्रह्म नहीं
करत कल्पना हारे रे ।
मन बुद्धि को जो जानत है
ब्रह्म कहावत सोय रे ॥

जिस मूरत को सब जग मानत
अरु जिसे ब्रह्म बतावत रे ।
उस मूरत को ब्रह्म न जानो
केन उपनिष जनावत रे ॥

जीव भाव को बिन त्यागे से
ब्रह्म निष्ठा नहीं होय रे ।
कहे निरंजन तू ब्रह्म रूप है
छान्दोग्य बतलावे रे ॥

ब्रह्मरूप पहिचानो साधो
ब्रह्मरूप पहिचानो रे / सोऽहम् रूप पहिचानो रे॥

स्वामी निरंजन कृत ग्रंथावली

१. ज्ञानोदय
२. शान्तिपुष्प
३. भूली बिसरी स्मृति
४. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–१
५. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–२
६. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–३
७. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी–४
८. मैं अमृत का सागर
९. मैं ब्रह्म हूँ
१०. प्राणायाम,मुद्रा, ध्यान एवं वेदान्त पारिभाषिक शब्दकोश
११. सीता गीता
१२. राम गीता
१३. गुरु गीता
१४. पंचदशी प्रश्नोत्तर दीपिका
१५. भागवत रहस्य
१६. आत्म साक्षात्कार
१७. मन की जाने राम
१८. योग वशिष्ठ सार
१९. निरंजन भजनामृत सरिता
२०. स्वरूप चिन्तन
२१. कर्म से मोक्ष नहीं
२२. श्रद्धा की प्रतिमा सद्गुरु
२३. अमृत बिन्दु
२४. उपनिषद् सिद्धान्त एवं वेदान्त रत्नावली
२५. सहज समाधि
२६. ज्ञान ज्योति
२७. कबीर साखी संकलन
२८. सहज ध्यान
२९. हे राम ! उठो जागो
३०. सद्गुरु कौन ?
३१. श्रीराम चिन्तन
३२. तत्त्वमसि
३३. साक्षी की खोज
३४. आत्मज्ञान के हीरे मोती

पूज्य स्वामीजी के अमृत प्रवचन तथा आत्मज्ञान
आधारित भजन का कैसेट एवं सि.डि उपलब्ध है

Visit us at : www.niranjanmission.org

अधिक जानकारी तथा ग्रन्थ प्राप्ति के लिये सम्पर्क करें :
प्लट नं : **58/60**, दिव्य विहार, सामन्तरायपुर, भुवनेश्वर-2 (उड़िशा)
फोन नं : **(0674) 2340136, 9437006566**

आत्मज्ञान की मासिक पत्रिका **'तत्त्वमसि'**
के सदस्यता हेतु संपर्क करें : श्री पंचम प्रसाद
Qr.No: B-39, Sector-7, Rourkela-769 003, Orissa
Ph: 0661-2649785, 9438168961